

१०८. रात्रिभुक्तित्यागफलाख्यानम्

प्रणम्योच्चैर्जिनं देवं भारतीं सद्गुरुं क्रमात्। रात्रिभुक्तिपरित्याग-फलं वक्ष्ये गुणोज्ज्वलम् ॥१॥
 निशाभुक्तिं त्यजन्त्येव ये भव्या धर्महेतवे। तेषां सतां महासौख्यं भवेल्लोकद्वये सदा ॥२॥
 कीर्त्तिः कान्तिर्महाशान्तिः सम्पदा विविधाः सदा। दीर्घायुः स्यात्सुखोपेतं रात्रिभोजनवर्जनात् ॥३॥
 दारिद्र्यपीडिता नित्यमन्धाः पुत्रादिवर्जिताः। महारोगशतक्रान्ताः स्युर्नरा निशिभोजनात् ॥४॥
 पतत्कीटपतंगादे-र्भक्षणात्रिशिभोजनम्। त्याज्यं पापप्रदं सद्भिर्मांसव्रतविशुद्धये ॥५॥
 दिवसस्य मुखे चान्ते मुक्त्वा द्वे द्वे सुधार्मिकैः। घटिके भोजनं कार्यं श्रावकाचारचञ्चुभिः ॥६॥

उक्तं च श्रीसमन्तभद्रपादैः—

अह्नेमुखेऽवसाने च यो द्वे द्वे घटिके त्यजेत्। निशाभोजनदोषज्ञोऽश्नात्यसौ पुण्यभाजनम्॥
 ताम्बूलं सुजलं किञ्चिदौषधं दोषवर्जितम्। मुक्त्वा कष्टेऽपि सन्त्याज्यं रात्रौ सद्भिः फलादिकम् ॥७॥
 ये त्यजन्ति सदाहारं रात्रौ भव्याश्चतुर्विधम्। स्यात्षण्मासोपवासोत्थं तेषां संवत्सरे शुभम् ॥८॥
 अथ श्रीजिनसूत्रोक्तां तद्दृष्टान्तकथां ब्रूवे। श्रीमत्प्रीतिकरस्योच्चैः संक्षेपेण सतां श्रिये ॥९॥

१०८. रात्रिभोजन त्याग कथा

जिन भगवान्, जिनवाणी और गुरुओं को नमस्कार कर रात्रि भोजन का त्याग करने से जिसने फल प्राप्त किया उसकी कथा लिखी जाती है ॥१॥

जो लोग धर्मरक्षा के लिए, रात्रिभोजन का त्याग करते हैं, वे दोनों लोकों में सुखी होते हैं, यशस्वी होते हैं, दीर्घायु होते हैं, कान्तिमान होते हैं और उन्हें सब सम्पदाएँ तथा शान्ति मिलती है, और जो लोग रात में भोजन करने वाले हैं, वे दरिद्री होते हैं, जन्मांध होते हैं, अनेक रोग और व्याधियाँ उन्हें सदा सताए रहती हैं, उनके संतान नहीं होती। रात में भोजन करने से छोटे जीव जन्तु नहीं दिखाई पड़ते। वे खाने में आ जाते हैं। उससे बड़ा पापबन्ध होता है। जीवहिंसा का पाप लगता है। मांस का दोष लगता है। इसलिए रात्रिभोजन का छोड़ना सबके लिए हितकारी है और खासकर उन लोगों को तो छोड़ना ही चाहिए जो मांस नहीं खाते। ऐसे धर्मात्मा श्रावकों को दिन निकले दो घड़ी बाद सबेरे और दो घड़ी दिन बाकी रहे तब शाम को भोजन वगैरह से निवृत्त हो जाना चाहिए। समन्तभद्रस्वामी का भी ऐसा ही मत है—“रात्रि भोजन का त्याग करने वाले को सबेरे शाम को आरम्भ और अन्त में दो-दो घड़ी छोड़कर भोजन करना चाहिए।” जो नैष्ठिक श्रावक नहीं हैं उनके लिए पान, सुपारी, इलायची, जल और पवित्र औषधि आदि का सेवन विशेष दोष के कारण नहीं है, इन्हें छोड़कर और अन्न की चीजें या मिठाई, फलादिक ये सब कष्ट पड़ने पर भी कभी न खाना चाहिए। जो भव्य जीवन भर के लिए चारों प्रकार के आहार का रात में त्याग कर देते हैं उन्हें वर्ष भर में छह माह के उपवास का फल होता है। रात्रिभोजन को त्याग करने से प्रीतिकर कुमार को फल प्राप्त हुआ था उसकी विस्तृत कथा अन्य ग्रन्थों में प्रसिद्ध है। यहाँ उसका सार लिखा जाता है—॥२-९॥

इहैव भरतक्षेत्रे देशे मगधसंज्ञके। नाना सत्संपदाकारिजिनधर्मविराजिते ॥१०॥
 सुप्रतिष्ठपुरे जातो जयसेनो महीपतिः। धार्मिको न्यायशास्त्रज्ञो स्वप्रजापालने स्थितः ॥११॥
 श्रेष्ठी कुबेरदत्ताख्यो जिनपादाब्जयो रतः। तत्प्रिया धनमित्राख्या संजाता धर्मवत्सला ॥१२॥
 एकदा तौ महाभक्त्या दत्त्वात्रं प्राशुकं शुभम्। नाम्ना सागरसेनाय मुनये ज्ञानचक्षुषे ॥१३॥
 भो स्वामित्रावयोः पुत्रो भविष्यति न वा सुधीः। नोचेद्दीक्षां गृहीष्यावो जैनीं पापप्रणाशनीम् ॥१४॥
 तस्य पादौ प्रणम्येति प्रश्नं संचक्रतुस्ततः। मुनिः प्राह महाभाग्यो युवयोस्तनुजो महान् ॥१५॥
 चरमाङ्गधरो भव्यो भव्यसन्दोहतारकः। भविष्यतीति भो श्रेष्ठिभ्वद्वंशशिरोमणिः ॥१६॥
 श्रुत्वा तौ मुनिनाथोक्तं परमानन्दमापतुः। न भवेत्कस्य वानन्दः सद्गुरोर्वचनामृतात् ॥१७॥
 ततस्तयोजिनेन्द्राणां महास्नपनपूर्वकम्। कल्याणदायिनीं पूजां पात्रदानं सुखप्रदम् ॥१८॥
 कुर्वतो सुखतः कैश्चिन्मासैर्जातः सुतोत्तमः। तदानन्दः स्वबन्धूनामभूत्प्राप्ते निधौ यथा ॥१९॥
 तद्दर्शनात्समुत्पन्नां सर्वेषां प्रीतिरद्भुता। प्रोक्तः प्रीतिकरी नाम्ना ताताद्यैः स महामुदा ॥२०॥

मगध में सुप्रतिष्ठपुर अच्छा प्रसिद्ध शहर था। अपनी सम्पत्ति और सुन्दरता से वह स्वर्ग से टक्कर लेता था। जिनधर्म का वहाँ विशेष प्रचार था। जिस समय की यह कथा है, उस समय उसके राजा जयसेन थे। जयसेन धर्मज्ञ, नीतिपरायण और प्रजाहितैषी थे ॥१०-११॥

यहाँ धनमित्र नाम का एक सेठ रहता था। इसकी स्त्री का नाम धनमित्रा था। दोनों ही की जैनधर्म पर अखण्ड प्रीति थी। एक दिन सागरसेन नाम के अवधिज्ञानी मुनि को आहार देकर इन्होंने उनसे पूछा-प्रभो! हमें पुत्र सुख होगा या नहीं? यदि न हों तो हमें व्यर्थ की आशा से अपने दुर्लभ मनुष्य-जीवन को संसार के मोह-माया में फँसा रखकर, उसका क्यों दुरुपयोग करें? फिर क्यों न हम पापों के नाश करने वाली पवित्र जिनदीक्षा ग्रहण कर आत्महित करें? मुनि ने इनके प्रश्न के उत्तर में कहा-हाँ अभी तुम्हारी दीक्षा का समय नहीं आया। कुछ दिन गृहवास में तुम्हें अभी और ठहरना पड़ेगा। तुम्हें एक महाभाग और कुलभूषण पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी। वह बड़ा तेजस्वी होगा। उसके द्वारा अनेक प्राणियों का उद्धार होगा और वह इसी भव से मोक्ष जाएगा। अवधिज्ञानी मुनि की यह भविष्यवाणी सुनकर दोनों को अपार हर्ष हुआ। सच है, गुरुओं के वचनामृत का पान कर किसे हर्ष नहीं होता ॥१२-१७॥

तब से वे सेठ-सेठानी अपना समय जिनपूजा, अभिषेक, पात्रदान आदि पुण्य कर्मों में अधिक समय देने लगे, क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास था कि सुख का कारण धर्म ही है। इस प्रकार आनन्द उत्सव के साथ कुछ दिन बीतने पर धनमित्रा ने एक प्रतापी पुत्र प्रसव किया। मुनि की भविष्यवाणी सच हुई। पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में सेठ ने बहुत उत्सव किया, दान दिया, पूजा प्रभावना की। बन्धु-बाँधवों को बड़ा आनन्द हुआ। उस नवजात शिशु को देखकर सबको अत्यन्त प्रीति हुई इसलिए उसका नाम भी प्रीतिकर रख दिया गया। दूज के चाँद की तरह वह दिनों-दिन बढ़ने लगा। सुन्दरता

ततोऽसौ स्वगुणैः सार्द्धं प्राप्तानेकमहोत्सवः। वृद्धिं सम्प्राप्तवानुच्चैर्द्वितीयेन्दुरिवामलः ॥२१॥
 रूपेण जितकन्दर्पः सौभाग्यजितभूतलः। चरमाङ्गधरत्वाच्च तद्वलं केन वर्ण्यते ॥२२॥
 जातेऽथ पञ्चमे वर्षे स तस्मै गुरवे मुदा। पित्रा समर्पितो भक्त्या पठनार्थं महोत्सवैः ॥२३॥
 कैश्चित्संवत्सरैः सोऽपि नानाशास्त्रमहार्णवम्। समुत्तीर्णः सुधीः स्थित्वा गुरुसेवातरण्डके ॥२४॥
 ततोऽसौ प्राप्तसद्विद्यो महाशास्त्रोपदेशनम्। श्रावकाणां करोति स्म धर्मसंवृद्धिहेतवे ॥२५॥
 तथाभूतं तमालोक्य स राजा जयसेनवाक्। पूजयामास सत्प्रीत्या कुमारं कनकादिभिः ॥२६॥
 एकदासौ पितुर्गौहे कुमारः प्रौढयौवनः। सत्यां सुसम्पदायां च यावन्नोपार्जयाम्यहम् ॥२७॥
 महद्भ्रं स्वयं तावन्न कुर्वे पाणिपीडनम्। संचिन्त्येति महामानो गत्वा द्वीपान्तरं मुदा ॥२८॥
 नाना रत्नादिकं द्रव्यं समादाय विभूतिभिः। सुखेन गृहमायातः पुण्येन सुलभाः श्रियः ॥२९॥

में यह कामदेव से कहीं बढ़कर था, बड़ा भाग्यवान् था और इसके बल के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या, जबकि यह चरमशरीर का धारी-इसी भव से मोक्ष जाने वाला हैं। जब प्रीतिकर पाँच वर्ष का हो गया, तब उसके पिता ने उसे पढ़ाने के लिए गुरु को सौंप दिया। इसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी और फिर इस पर गुरु की कृपा हो गई। इससे यह थोड़े ही वर्षों में पढ़ लिखकर योग्य विद्वान् बन गया। कई शास्त्रों में उसकी अबाधगति हो गई, गुरु-सेवारूपी नाव द्वारा इसने शास्त्ररूपी समुद्र का प्रायः अधिकांश पार कर लिया। विद्वान् और धनी होकर भी उसे अभिमान छू तक न पाया था। यह सदा लोगों को धर्म का उपदेश दिया करता और पढ़ाता-लिखाता था। उसमें आलस्य, ईर्ष्या, मत्सरता आदि दुर्गुणों का नाम निशान भी न था। यह सबसे प्रेम करता था। वह सबके दुःख-सुख में सहानुभूति रखता। वही कारण था कि उसे सब छोटे-बड़े हृदय से चाहते थे। जयसेन उसको ऐसी सज्जनता और परोपकार बुद्धि देखकर बहुत खुश हुए। उन्होंने स्वयं उसका वस्त्राभूषणों से आदर सत्कार किया, इससे उसकी इज्जत बढ़ाई ॥१८-२६॥

यद्यपि प्रीतिकर को धन दौलत की कोई कमी नहीं थी परन्तु तब भी एक दिन बैठे-बैठे उसके मन में आया कि अपने को भी कमाई करनी चाहिए। कर्तव्यशीलों का यह काम नहीं कि बैठे-बैठे अपने बाप-दादों की सम्पत्ति पर मजा-मौज उड़ाकर आलसी और कर्तव्यहीन बनें और न सपूतों का यह काम है। इसलिए मुझे धन कमाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यह विचार कर उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं स्वयं कुछ न कमा लूँगा तब तक ब्याह न करूँगा। प्रतिज्ञा के साथ ही वह विदेश के लिए रवाना हो गया। कुछ वर्षों तक विदेश में ही रहकर उसने बहुत धन कमाया। खूब कीर्ति अर्जित की। उसे अपने घर से गए कई वर्ष बीत गए थे, इसलिए अब उसे अपने माता-पिता की याद आने लगी। फिर वह बहुत दिनों बाहर रहकर अपना सब माल असबाब लेकर घर लौट आया। सच हैं पुण्यवानों को लक्ष्मी थोड़े ही प्रयत्न से मिल जाती है। प्रीतिकर अपने माता-पिता से मिला। सब को बहुत आनन्द हुआ। जयसेन का प्रीतिकर की पुण्यवानी और प्रसिद्धि

ततस्तस्मै सुपुण्याय स भूपः परमादरात्। पृथिवीसुन्दरीं नाम्ना स्वपुत्रीं पुण्यशालिनीम् ॥३०॥
 अर्द्धराज्यं निजं प्राज्यं जयकोलाहनस्वनैः। द्वीपान्तरात्समायातां कन्यामन्या वसुन्धराम् ॥३१॥
 अन्याश्चापि वणिक्पुत्रीः कल्याणविधिना ददौ। प्रीतिकरकुमाराय विभूत्या गुणशालिने ॥३२॥
 तथा राज्यादिसम्प्राप्तेर्ज्ञातव्यं कारणं महत्। श्रीमत्महापुराणे च विस्तरेण बुधोत्तमैः ॥३३॥
 अथ प्रीतिकरो धीमान्प्राप्य राज्यादिसम्पदाः। स्वपुण्येन समानीता भुञ्जानः सुतरां सुखम् ॥३४॥
 ददत्पात्राय सद्दानं नित्यं सप्तगुणान्वितः। महासौख्याकरं प्रीत्या नवपुण्यैर्विराजितम् ॥३५॥
 पूजां श्रीमज्जिनेन्द्राणां महास्नपनपूर्वकम्। कुर्वन्निध्वस्तदुर्लेश्यां स्वमोक्षसुखकारिणीम् ॥३६॥
 जिनप्रासादबिम्बादिसप्तक्षेत्राणि तर्पयन्। शमशस्यप्रदान्युच्चैः स्ववित्तामृतवृष्टिभिः ॥३७॥
 तन्वन्परोपकारं च यथायोग्यं विचक्षणः। निजशीलसमायुक्तो विद्वद्गोष्ठीषु तत्परः ॥३८॥
 इत्यादिश्रीजिनेन्द्रोक्त-धर्मसेवासमग्रधीः। संस्थितः सुखतो नित्यं स्वप्रजाः प्रतिपालयन् ॥३९॥
 चिरं यावत्तदा तस्मिन्संन्यासविधिना सुखम्। मुनौ सागरसेनाख्ये प्राप्ते लोकान्तरं शुभम् ॥४०॥
 ततो मनोहरोद्याने चारणौ शर्मकारिणौ। ऋजुमत्याख्यमत्यन्तविपुलौ मुनिसत्तमौ ॥४१॥
 समागत्य स्थितौ सौख्यं तदाकर्ण्य सुपुण्यवान्। गत्वा तत्र महाभूत्या भव्यसंघसमन्वितः ॥४२॥

सुनकर उस पर अत्यन्त प्रेम हो गया। उन्होंने तब अपनी कुमारी पृथ्वीसुन्दरी और एक दूसरे देश से आई हुए वसुन्धरा तथा और भी कई सुन्दर-सुन्दर राजकुमारियों का ब्याह इस महाभाग के साथ बड़े ठाट-बाट से कर दिया। इसके साथ जयसेन ने अपना आधा राज्य भी इसे दे दिया। प्रीतिकर के राज्य प्राप्ति आदि के सम्बन्ध की विशेष कथा यदि जानना हो तो महापुराण का स्वाध्याय करना चाहिए ॥२७-३३॥

प्रीतिकर को पुण्योदय से जो राज्यविभूति प्राप्त हुई उसे सुखपूर्वक भोगने लगा। उसके दिन आनन्द-उत्सव के साथ बीतने लगे। इससे यह न समझना चाहिए कि प्रीतिकर सदा विषयों में ही फँसा रहता है। वह धर्मात्मा भी था क्योंकि वह निरन्तर जिन भगवान् की अभिषेक-पूजा करता, जो कि स्वर्ग या मोक्ष का सुख देने वाली और बुरे भावों या पापकर्मों का नाश करने वाली है। वह श्रद्धा, भक्ति आदि गुणों से युक्त हो पात्रों को दान देता, जो दान महान् सुख का कारण है। वह जिनमन्दिरों, तीर्थक्षेत्रों, जिन प्रतिमाओं आदि सप्त क्षेत्रों की, जो कि शान्तिरूपी धन के प्राप्त कराने के कारण हैं, जरूरतों को अपने धनरूपी जल-वर्षा से पूरी करता, परोपकार करना उसके जीवन का एक मात्र उद्देश्य था। वह स्वभाव का बड़ा सरल था। विद्वानों से उसे प्रेम था। इस प्रकार इस लोक सम्बन्धी और पारमार्थिक कार्यों में सदा तत्पर रहकर वह अपनी प्रजा का पालन करता रहता था ॥३४-३९॥

प्रीतिकर का समय इस प्रकार बहुत सुख से बीतता था। एक बार सुप्रतिष्ठपुर के सुन्दर बगीचे में सागरसेन नाम के मुनि आकर ठहरे थे। उनका वहीं स्वर्गवास हो गया था। उनके बाद फिर इस बगीचे में आज चारणऋद्धि धारी ऋजुमति और विपुलमति मुनि आए। प्रीतिकर तब बड़े वैभव के साथ भव्यजनों को लिए उनके दर्शनों को गया। मुनिराज के चरणों की आठ द्रव्यों से पूजा की और

जलाद्यैरष्टभिर्द्रव्यैः समभ्यर्च्य तयोः क्रमान्। भक्त्या प्रणम्य योगीन्द्रौ तौ तपोरत्नसागरौ ॥४३॥
 सद्धर्मं पृष्टवानुच्चैर्विनयानम्रमस्तकः। ततो ज्येष्ठमुनिः प्राह गंभीरमधुरध्वनिः ॥४४॥
 शृणु त्वं भो महाभव्य धर्मो हि द्विविधो मतः। मुनिश्रावकभेदेन जिनेन्द्राणां जगद्धितः ॥४५॥
 महाधर्मो मुनीन्द्राणां पूर्वः स्वपरतारकः। उत्तमादिक्षमादिश्च दशलाक्षणिको भवेत् ॥४६॥
 श्रावकाणां तथा धर्मं शृणु प्रीतिकरं बुवे। स्वर्गादिशर्मदं पूतमपवर्गस्य कारणम् ॥४७॥
 तत्राद्यं सारसम्यक्त्वं पालनीयं बुधोत्तमैः। अष्टाङ्गादिप्रभेदोक्तमुक्तिबीजं सुखप्रदम् ॥४८॥
 मिथ्यात्वं दूरतस्याज्यं कान्तिवद्धीधनैः सदा। येन बद्धो भवेज्जीवो भवभ्रमणदुःखभाक् ॥४९॥
 तत्त्वं जानीहि मिथ्यात्वं विपरीतं जिनेशिनाम्। तत्त्वेभ्यो यन्महाभव्यं नानादुःखशतप्रदम् ॥५०॥
 तथा श्रीमज्जिनेन्द्रोक्तशास्त्राणां श्रवणेन च। मतिर्दर्पणवत्कार्या सदा शुद्धा विचक्षणैः ॥५१॥
 मद्यमांसमधु त्याज्यं सहोदुम्बरपञ्चकम्। यद्भक्षणाद्भवेत्प्राणी दुर्गतेर्दुःखभाजनम् ॥५२॥
 अणुव्रतानि पञ्चैव सार्द्धं त्रेधा गुणव्रतैः। शिक्षाव्रतानि चत्वारि पालनीयानि पण्डितैः ॥५३॥
 रात्रिभोजनचर्मस्थहिङ्गुतोयधृतादिकम्। संत्याज्यं सुधिया नित्यं मांसव्रतविशुद्धये ॥५४॥
 व्यसनानि तथा सप्त हेयान्युच्चैः सतां सदा। कुलजातिधनस्फीति-क्षयकारीणि देहिनाम् ॥५५॥
 कन्दमूलं ससन्धानं नवनीतं च वर्जयेत्। महायत्नो विधेयो हि जलानां गालने बुधैः ॥५६॥

नमस्कार कर बड़े विनय के साथ धर्म का स्वरूप पूछा-तब ऋजुमति मुनि ने उसे इस प्रकार संक्षेप में धर्म का स्वरूप कहा- ॥४०-४४॥

प्रीतिकर, धर्म उसे कहते हैं जो संसार के दुःखों से रक्षाकर उत्तम सुख प्राप्त करा सके। ऐसे धर्म के दो भेद हैं-एक मुनिधर्म और दूसरा गृहस्थ धर्म। मुनियों का धर्म सर्व त्याग रूप होता है। सांसारिक माया-ममता से उनका कुछ सम्बन्ध नहीं रहता और वह उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव आदि दस आत्मिक शक्तियों से युक्त होता है। गृहस्थधर्म में संसार के साथ लगाव रहता है। घर में रहते हुए धर्म का पालन करना पड़ता है। मुनिधर्म उन लोगों के लिए है जिनका आत्मा पूर्ण बलवान् है, जिनमें कष्टों के सहने की पूरी शक्ति है और गृहस्थ धर्म मुनिधर्म के प्राप्त करने की सीढ़ी है। जिस प्रकार एक साथ सौ-पचास सीढ़ियाँ नहीं चढ़ी जा सकतीं उसी प्रकार साधारण लोगों में इतनी शक्ति नहीं होती कि वे एकदम मुनिधर्म ग्रहण कर सकें। उसके अभ्यास के लिए वे क्रम-क्रम से आगे बढ़ते जाँय, इसलिए पहले उन्हें गृहस्थधर्म का पालन करना पड़ता है। मुनिधर्म और गृहस्थधर्म में सबसे बड़ा भेद यह है कि, पहला साक्षात् मोक्ष का कारण है और दूसरा परम्परा से। श्रावकधर्म का मूल कारण है-सम्यग्दर्शन का पालन। यही मोक्ष-सुख का बीज है। बिना इसके प्राप्त किए ज्ञान, चारित्र्य वगैरह की कुछ कीमत नहीं। इस सम्यग्दर्शन को आठ अंगों सहित पालना चाहिए। सम्यक्त्व पालने के पहले मिथ्यात्व छोड़ा जाता है क्योंकि मिथ्यात्व ही आत्मा का एक ऐसा प्रबल शत्रु है जो संसार में इसे अनन्त काल तक भटकाये रहता है और कुगतियों के असह्य दुःखों को प्राप्त कराता है। मिथ्यात्व का संक्षिप्त लक्षण है-जिन भगवान् के उपदेश किए तत्त्व या धर्म से उल्टा चलना और

नित्यं पात्राय सद्भानं देयं भक्त्या सुभाक्तिकैः। आहारादिचतुर्भेदं नानाशर्मशतप्रदम् ॥५७॥
 पात्र तु त्रिविधं ज्ञेयं मुनिश्रावकदृष्टिभाक्। तेषां दानं फलत्युच्चैः सत्सुखं वटबीजवत् ॥५८॥
 कार्या श्रीमज्जिनेन्द्राणां पूजा स्वर्मोक्षदायिनी। तोयाद्यैः श्रावकैर्नित्यमभिषेकपुरस्सरा ॥५९॥
 सत्तोयेक्षुरसाद्यैर्ये कृत्वा भक्त्या सुचिन्तनम्। अर्चयन्ति जिनाकारांस्ते लभन्ते सुरार्चनम् ॥६०॥
 जिनसप्ताकृतीनां च विधिः स्याच्छर्मणां निधिः। तत्प्रतिष्ठा तयोर्यात्रा दुर्गतिच्छेदकारिणी ॥६१॥
 इत्यादिधर्मसद्भावं समाश्रित्य सुखार्थिभिः। अन्ते सल्लेखना साध्या जिनपादाब्जचिन्तनैः ॥६२॥
 श्रुत्वेति मुनिनाथोक्तं द्विधा धर्मं सुखप्रदम्। भव्यास्ते तं समादाय जाता धर्मे तरां रताः ॥६३॥
 पुनः प्रीतिकरो भक्त्या नत्वा तं मुनिपुङ्गवम्। ब्रूहि भो करुणासिन्धो पूर्वजन्मेति सोवदत् ॥६४॥
 तच्छ्रुत्वा स मुनिः प्राह संज्ञानमयलोचनः। सुप्रतिष्ठपुरेत्रैव सद्भने मुनिसत्तमः ॥६५॥

यही धर्म से उल्टापन दुःख का कारण है। इसलिए उन पुरुषों को, जो सुख चाहते हैं, मिथ्यात्व के परित्याग पूर्वक शास्त्राभ्यास द्वारा अपनी बुद्धि को काँच के समान निर्मल बनानी चाहिए। इसके सिवा श्रावकों को मद्य, मांस और मधु (शहद) का त्याग करना चाहिए क्योंकि इनके खाने से जीवों को नरकादि दुर्गतियों में दुःख भोगना पड़ते हैं। श्रावकों के पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ऐसे बारह व्रत हैं, उन्हें धारण करना चाहिए। रात के भोजन का, चमड़े में रखे हुए हींग, जल, घी, तैल आदि का तथा कन्दमूल, आचार और मक्खन का श्रावकों को खाना उचित नहीं। इनके खाने से मांस-त्याग-व्रत में दोष आता है। जुआ खेलना, चोरी करना, परस्त्री सेवन, वेश्या सेवन, शिकार करना, मांस खाना, मदिरा पीना ये सात व्यसन-दुःखों को देने वाली आदतें हैं। कुल, जाति, धन, जन, शरीर, सुख, कीर्ति, मान-मर्यादा आदि का नाश करने वाली हैं। श्रावकों को इन सबका दूर से ही काला मुँह कर देना चाहिए। इसके सिवा जल का छानना, पात्रों को भक्तिपूर्वक दान देना, श्रावकों का कर्तव्य होना चाहिए। ऋषियों ने पात्र तीन प्रकार बतलाये हैं। **उत्तम पात्र**—मुनि, **मध्यम पात्र**—व्रती श्रावक और **जघन्य पात्र**—अविरत-सम्यग्दृष्टि। इनके सिवा कुछ लोग और ऐसे हैं, जो दान पात्र होते हैं—दुःखी, अनाथ, अपाहिज आदि, जिन्हें कि दयाबुद्धि से दान देना चाहिए। पात्रों को जो थोड़ा भी दान देते हैं उन्हें उस दान का फल वटबीज की तरह अनन्त गुण मिलता है। श्रावकों के और भी आवश्यक कर्म हैं। जैसे—स्वर्ग-मोक्ष के सुख की कारण जिन भगवान् की जलादि द्रव्यों द्वारा पूजा करना, अभिषेक करना, जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराना, तीर्थयात्रा करना आदि। ये सब सुख के कारण और दुर्गति के दुःखों के नाश करने वाले हैं। इस प्रकार धार्मिक जीवन बना कर अन्त में भगवान् का स्मरण-चिन्तन पूर्वक संन्यास लेना चाहिए। यही जीवन के सफलता का सीधा और सच्चा मार्ग है। इस प्रकार मुनिराज द्वारा धर्म का उपदेश सुनकर बहुतेरे सज्जनों ने व्रत, नियमादि को ग्रहण किया जैनधर्म पर उनकी गाढ़ श्रद्धा हो गई। प्रीतिकर ने मुनिराज को नमस्कार कर पुनः प्रार्थना की—हे करुणा के समुद्र योगिराज! कृपाकर मुझे मेरे पूर्वभव का हाल सुनाइए। मुनिराज ने तब यों कहना शुरू किया— ॥४५-६५॥

पुरा सागरसेनाख्यः समायातस्तपोनिधिः। तं वन्दितुं समागत्य सर्वे राजादयो मुदा ॥६६॥
 भेरीमृदंगकंसालमहानादेन भक्तितः। समभ्यर्च्य मुनेः पादौ स्तुत्वा नत्वा पुरं ययुः ॥६७॥
 तदा वादित्रसन्नादं श्रुत्वा कोयं जनो मृतः। पत्तनेऽत्र परिक्षिप्त्वा तं पौराः स्वगृहं गताः ॥६८॥
 अहं तं भक्षयिष्यामि संचिन्त्येति स्वमानसे। जम्बुको मृतकासक्तः समायातोति पापधीः ॥६९॥
 तमागच्छन्तमालोक्य स मुनिर्ज्ञानवीक्षणः। भव्योयं व्रतमादाय मुक्तिमाशु गमिष्यति ॥७०॥
 इति ज्ञात्वा सुकारुण्यादवोचद्रे शृगालक। त्वं पापादीदृशो जातो मुक्त्वा धर्मं जिनेशनाम् ॥७१॥
 अद्यापि मृतकासक्तो धिग्धित्ते मूढ चेष्टितम्। मुञ्च मुञ्च महापापं यावन्नरकभूमिषु ॥७२॥
 पतितोसि न पापेन तावत्त्वं कुरु रे शुभम्। स गोमायुस्तदाकर्ण्य मुनेर्वाक्यं महाहितम् ॥७३॥
 चित्तं मे स्वामिना ज्ञातं शान्तो भूत्वेति संस्थितः। पुनर्जगाद योगीन्द्रो मत्वा तस्य प्रशान्तताम् ॥७४॥
 व्रतेन्यस्मिन्समर्थोसि नैव त्वं मांसलम्पटः। गृहाणेदं व्रतं सारं रात्रिभोजनवर्जनम् ॥७५॥
 नित्यं सौख्यप्रदं पूतं सतां चेतोनुर्जनम्। श्रुत्वेति जम्बुकः सोपि साधुवाक्यं जगद्धितम् ॥७६॥
 त्रिः परीत्य मुनिं भक्त्या तस्मादादाय तद्व्रतम्। मद्यमांसादिकं पश्चात्त्यक्तवान्पुण्यवांस्तराम् ॥७७॥

“प्रीतिकर, इसी बगीचे में पहले तपस्वी सागरसेन मुनि आकर ठहरे थे। उनके दर्शनों के लिए राजा वगैरह प्रायः सब ही नगर निवासी बड़े गाजे-बाजे और आनन्द उत्सव के साथ आये थे। वे मुनिराज की पूजा-स्तुति कर वापस शहर में चले गए। इसी समय एक सियार ने इनके गाजे-बाजे के शब्दों को सुनकर यह समझा कि ये लोग किसी मुर्दे को डाल कर गए हैं। सो वह उसे खाने के लिए आया। उसे आता देख मुनि ने अवधिज्ञान से जान लिया कि यह मुर्दे को खाने के अभिप्राय से इधर आ रहा है। पर यह है भव्य और व्रतों को धारण कर मोक्ष जायेगा। इसलिए इसे सुलटाना आवश्यक है। यह विचार कर मुनिराज ने उसे समझाया-अज्ञानी पशु, तुझे मालूम नहीं कि पाप का परिणाम बहुत बुरा होता है। देख, पाप के ही फल से तुझे आज इस पर्याय में आना पड़ा और फिर भी तू पाप करने से मुँह न मोड़कर मुर्दे को खाने के लिए इतना व्यग्र हो रहा है, यह कितने आश्चर्य की बात है। तेरी इस इच्छा को धिक्कार है। प्रिय, जब तक तू नरकों में न गिरे इसके पहले ही तुझे यह महा पाप छोड़ देना चाहिए। तूने जिनधर्म को न ग्रहण कर आज तक दुःख उठाया, पर अब तेरे लिए बहुत अच्छा समय उपस्थित है। इसलिए तू इस पुण्य-पथ पर चलना सीख। सियार का होनहार अच्छा था या उसकी काललब्धि आ गई थी। यही कारण था कि मुनि के उपदेश को सुनकर वह बहुत शान्त हो गया। उसने जान लिया कि मुनिराज मेरे हृदय की वासना को जान गए। उसे इस प्रकार शान्त देखकर मुनि फिर बोले-प्रिय, तू और व्रतों को धारण नहीं कर सकता, इसलिए सिर्फ रात में खाना-पीना ही छोड़ दे। यह व्रत सर्व व्रतों का मूल है, सुख का देने वाला है और चित्त का प्रसन्न करने वाला है। सियार ने उपकारी मुनिराज के वचनों को मानकर रात्रिभोजन-त्याग-व्रत ले लिया। कुछ दिनों तक तो उसने केवल उसी व्रत को पाला। उसके बाद उसने मांस वगैरह भी छोड़ दिया। उसे जो कुछ थोड़ा पवित्र खाना मिल जाता, वह उसी को खाकर रह जाता। इस वृत्ति से उसे सन्तोष

ततः कालं नयत्येवं कञ्चिच्छुद्धाशनेन च। यावत्संतोषभावेन नित्यं पादौ मुनेः स्मरन् ॥७८॥
 एकदा तपसा क्षीणः शुष्काहारं स जम्बुकः। भुक्त्वा महातृषाक्रान्तस्तोयपानाय कूपकम् ॥७९॥
 संप्रविश्य सुधीः सन्ध्या-काले सोपानमार्गतः। दृष्ट्वा कूपे तमो गाढं सूर्यास्तं गतवानिति ॥८०॥
 मत्वा तथा तृषाक्रान्तो बहिरागत्य भास्करम्। दृष्ट्वा पुनः प्रविश्यैवं कांश्चिद्द्वारान्तागतम् ॥८१॥
 कृत्वा तत्र रविं नीत्वा तमस्तं स्वव्रते दृढः। रात्रौ तृष्णाग्निसन्तप्तो विशुद्धपरिणामभाक् ॥८२॥
 स्मरन्निजगुरुं पूतं संसाराम्भोधितारणम्। मृत्वा तेनात्र पुण्येन त्वं जातोसि विचक्षणः ॥८३॥
 पुत्रः श्रीमत्कुबेरादिदत्ताख्यधनमित्रयोः। नाम्ना प्रीतिकरो धीमान्नानासम्पद्विराजितः ॥८४॥
 चरमाङ्गधरो धीरो रूपलावण्यमण्डितः। तस्माद् भो भव्य कर्तव्यं कष्टेऽपि व्रतरक्षणम् ॥८५॥
 तच्छ्रुत्वा बहवो भव्या मुनीन्द्रोक्तं सुशर्मदम्। धर्मे श्रीमज्जिनेन्द्रोक्ते संसक्ता भक्तितस्तराम् ॥८६॥
 तथा प्रीतिकरः सोऽपि स्वभवान्तरमद्भुतम्। श्रुत्वा संवेगमासाद्य स्तुत्वा धर्मं जिनेशिनम् ॥८७॥
 प्रीत्या प्रणम्य तौ साधू निजात्मपरतारकौ। संस्मरन्व्रतमाहात्म्यं सुधीः स्वगृहमागतः ॥८८॥
 ततस्त्रिविधवैराग्यं प्राप्य प्रीतिकरो महान्। संसारमस्थिरं ज्ञात्वा भोगान्दुःखप्रदान्भुवि ॥८९॥

बहुत हो गया था। बस वह इसी प्रकार समय बिताता और मुनिराज के चरणों को स्मरण किया करता ॥८६-७८॥

इस प्रकार कभी खाने को मिलने और कभी न मिलने से वह सियार बहुत ही दुबला हो गया। ऐसी दशा में एक दिन उसे केवल सूखा भोजन खाने को मिला। समय गर्मी का था। उसे बड़े जोर की प्यास लगी। उसके प्राण छटपटाने लगे। वह एक कुँए पर पानी पीने को गया। भाग्य से कुँए का पानी बहुत नीचा था। जब वह कुँए में उतरा तो उसे अँधेरा ही अँधेरा दीखने लगा। कारण सूर्य का प्रकाश भीतर नहीं पहुँच पाता था। इसलिए सियार ने समझा कि रात हो गई, सो वह बिना पानी पिए ही कुँए के बाहर आ गया। बाहर आकर जब उसने दिन देखा तो फिर वह भीतर उतरा और भीतर पहले सा अँधेरा देखकर रात के भ्रम से फिर लौट आया। इस प्रकार वह कितनी ही बार आया-गया, पर जल नहीं पी पाया। अन्त में वह इतना अशक्त हो गया कि उससे कुँए से बाहर नहीं आया गया। उसने तब घोर अँधेरे को देखकर सूरज को अस्त हुआ समझ लिया और वहीं वह संसार समुद्र से पार करने वाले अपने गुरु मुनिराज का स्मरण-चिन्तन करने लगा। तृषा रूपी आग उसे जलाए डालती थी, तब भी वह अपने व्रत में बड़ा दृढ़ रहा। उसके परिणाम क्लेशरूप या आकुल-व्याकुल न होकर बड़े शान्त रहे। उसी दशा में वह मरकर कुबेरदत्त और उसकी स्त्री धनमित्रा के प्रीतिकर पुत्र हुआ है। तेरा यह अन्तिम शरीर है। अब तू कर्मों का नाश कर मोक्ष जाएगा। इसलिए सत्पुरुषों का कर्तव्य है कि वे कष्ट समय में व्रतों की दृढ़ता से रक्षा करें। मुनिराज द्वारा प्रीतिकर का यह पूर्व जन्म का हाल सुन उपस्थित मंडली की जिनधर्म पर अचल श्रद्धा हो गई। प्रीतिकर को अपने इस वृत्तान्त से बड़ा वैराग्य हुआ। उसने जैनधर्म की बहुत प्रशंसा की और अन्त में उन स्वपरोपकार के करने वाले मुनिराजों को भक्ति से नमस्कार कर व्रतों के प्रभाव को हृदय में विचारता हुआ वह घर पर आया ॥७९-८९॥

शरीरं मलसन्दोहं महापूति परिक्षयि। सम्पदां चपलां मत्वा चंचलामिव मोहिनीम् ॥९०॥
 पुत्रमित्रकलत्रादि-सर्वं बुद्ध्वात्मनः पृथक्। त्यक्त्वा मोहमहाजालं भवभ्रमणकारणम् ॥९१॥
 श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्राणां महास्नपनपूर्वकम्। कृत्वा पूजां लसद्भक्त्या सर्वकल्याणदायिनीम् ॥९२॥
 दत्त्वा दानं यथायोग्यं स्वलक्ष्मीं स्वसुताय च। दत्त्वा प्रियंकराख्याय विधिना न्यायतत्त्ववित् ॥९३॥
 बन्धूनापृच्छ्य सद्वाक्यैः कैश्चिद्बन्धुजनैः सह। गत्वा राजगृहं प्राप्य वर्द्धमानजिनेशिनः ॥९४॥
 पार्श्वं शक्रादिभिः सेव्यं भक्त्या नत्वा तमद्भुतम्। दीक्षां जैनीं जगत्पूज्यां संजग्राह शिवप्रदाम् ॥९५॥
 महत्तपस्ततः कृत्वा रत्नत्रयविशुद्धिभाक्। शुक्लध्यानाग्निना दग्ध्वा घातिकर्मचतुष्टयम् ॥९६॥
 केवलज्ञानमुत्पाद्य लोकालोकप्रकाशकम्। इन्द्रनागेन्द्रचन्द्रार्क-खेचरेन्द्रनरार्चितम् ॥९७॥
 जैनधर्माभ्युदयैर्जगत्तापप्रहारिभिः। भव्यान्सम्बोध्य सन्मार्गे कृत्वा शर्मप्रभागिनः ॥९८॥
 शेषकर्मणि निर्मूल्य भूत्वा सोष्टमहागुणी। मुक्तिं प्रीतिकरः स्वामी सम्प्राप्तो मेस्तु शान्तये ॥९९॥
 इति प्रीतिकरस्वामि-सच्चारित्रं जगद्धितम्। अस्माकं भवतां भव्या भूयात्संज्ञानहेतवे ॥१००॥

मुनिराज के उपदेश का उस पर बहुत गहरा असर पड़ा। उसे अब संसार अस्थिर, विषयभोग दुःखों के देने वाले, शरीर पवित्र-अपवित्र वस्तुओं से भरा, महाघिनौना और नाश होने वाला, धन-दौलत बिजली की तरह चंचल और केवल बाहर से सुन्दर देख पड़ने वाली तथा स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु आदि ये सब अपने आत्मा से पृथक् जान पड़ने लगे। उसने तब इस मोहजाल की, जो केवल फँसाकर संसार में भटकाने वाला है, तोड़ देना ही उचित समझा। इस शुभ संकल्प के दृढ़ होते ही पहले प्रीतिकर ने अभिषेक पूर्वक भगवान् की सब सुखों को देने वाली पूजा की, खूब दान किया और दुःखी, अनाथ, अपाहिजों की सहायता की। अन्त में वह अपने प्रियंकर पुत्र को राज्य देकर अपने बन्धु, बांधवों की सम्मति से योग लेने के लिए विपुलाचल पर भगवान् वर्धमान के समवसरण में गया और उन त्रिलोक पूज्य भगवान् के पवित्र दर्शन कर उसने भगवान् के द्वारा जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। इसके बाद प्रीतिकर मुनि ने खूब दुःसह तपस्या की और अन्त में शुक्लध्यान द्वारा घातिया कर्मों का नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया। अब वे लोकालोक के सब पदार्थों को हाथ की रेखाओं के समान साफ-साफ जानने देखने लग गए। उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया। यह सुन विद्याधर, चक्रवर्ती, स्वर्ग के देव आदि बड़े-बड़े महापुरुष उनके दर्शन-पूजन को आने लगे। प्रीतिकर भगवान् ने तब संसार ताप को नाश करने वाले परम पवित्र उपदेशामृत से अनेक जीवों को दुःखों से छुड़ाकर सुखी बनाये। अन्त में अघातिया कर्मों का नाश कर वे परम धाम मोक्ष सिधार गए। आठ कर्मों का नाश कर आठ आत्मिक महान् शक्तियों को उन्होंने प्राप्त किया। अब वे संसार में न आकर अनन्त काल तक वहीं रहेंगे। वे प्रीतिकर स्वामी मुझे शांति प्रदान करें। प्रीतिकर का यह पवित्र और कल्याण करने वाला चरित आप भव्यजनों को और मुझे सम्यग्ज्ञान के लाभ का कारण हो। यही मेरी पवित्र भावना है ॥९०-१००॥

जिनपतिकथितं सद्धर्मलेशं श्रितोपि प्रवरनरभवं सम्प्राप्य गोमायुरुच्चैः।
विपुलतरमुखानि प्राप्तवान्मुक्तिलक्ष्मीं तदिह कुरुत भव्याः सारजैनेन्द्रधर्मम् ॥१०१॥
इति कथाकोशे रात्रिभुक्तित्यागफलप्राप्तप्रीतिकरस्वामिन आख्यानं समाप्तम्।

१०९. पात्रदानाख्यानम्

श्रीमत्तीर्थकरान्नत्वा वृषभादीन् जगद्गुरून्। सतां तान्प्रियकारिण्याः पात्रदानकथां ब्रुवे ॥१॥
श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रास्यात्संभवा पूतभारती। भवत्वाशु महाज्ञानसिन्धोः पाराय मे सती ॥२॥
स सम्यग्दर्शनज्ञानवृत्तरत्नापरिग्रहान्। निर्ग्रन्थान्भक्तितो वन्दे भुक्तिमुक्तिप्रदान् मुनीन् ॥३॥
आहारौषधसच्छास्त्रा-भयदानप्रभेदतः। प्राहुश्चत्वारि दानानि चतुराः पूर्वसूरयः ॥४॥
इतिदानादिसिद्धानि पवित्राणि जगत्त्रये। पात्रेषु योजितान्युच्चैः फलन्ति विपुलं फलम् ॥५॥
वटबीजं यथा चोप्तं युक्त्या सन्मृष्टभूमिषु। सुच्छायं फलति व्यक्तं पात्रदानं तथा सुखम् ॥६॥
एकवाण्या यथा नीरं नाना स्वादुप्रदं भवेत्। तरुभेदे तथा पात्रभेदे दानं फलप्रदम् ॥७॥
पात्रं जिनाश्रयी चापि वरं नान्ये सहस्रशः। एककल्पतरुः सेव्यः श्रेयसे न परदुमाः ॥८॥
उत्कृष्टं मुनिनाथश्च मध्यमं श्रावकस्तथा। ज्ञेयं पात्रं जघन्यं तु सदृष्टिर्जिनभक्तिभाक् ॥९॥

एक अत्यन्त अज्ञानी पशुओं में जन्मे सियार ने भगवान् के पवित्र धर्म का थोड़ा सा आश्रय लिया अर्थात् केवल रात्रिभोजनत्याग व्रत स्वीकार कर मनुष्य जन्म लिया और उसमें खूब सुख भोगकर अन्त में अविनाशी मोक्ष-लक्ष्मी प्राप्त की। तब आप हम लोग भी क्यों न इस अनन्त सुख की प्राप्ति के लिए पवित्र जैनधर्म में अपने विश्वास को दृढ़ करें ॥१०१॥

१०९. दान करने वालों की कथा

जगद्गुरु तीर्थकर भगवान् को नमस्कार कर पात्र दान के सम्बन्ध की कथा लिखी जाती है ॥१॥

जिन भगवान् के मुखरूपी चन्द्रमा से जन्मी पवित्र जिनवाणी ज्ञानरूपी महा समुद्र से पार करने के लिए मुझे सहायता दें, मुझे ज्ञान-दान दें ॥२॥

उन साधु रत्नों को मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारक हैं, परिग्रह कनक-कामिनी आदि से रहित वीतरागी हैं और सांसारिक सुख तथा मोक्ष सुख की प्राप्ति के कारण हैं ॥३॥

पूर्वाचार्यों ने दान को चार हिस्सों में बाँटा है, जैसे आहार-दान, औषधिदान, शास्त्रदान और अभयदान। ये ही दान पवित्र हैं। योग्य पात्रों को यदि ये दान दिये जायें तो इनका फल अच्छी जमीन में बोये हुए बड़ के बीज की तरह अनन्त गुणा होकर फलता है। जैसे एक ही बावड़ी का पानी अनेक वृक्षों में जाकर नाना रूप में परिणत होता है उसी तरह पात्रों के भेद से दान के फल में भी भेद हो